www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
शनिवार 2 नवंबर 2019

दैनिक जागरण
जीवन की सार्थकता उसकी सक्रियता में है

चुनावों की अति

महाराष्ट्र और हरियाणा में नई सरकारों का समुचित तरीके से गठन होने के पहले ही झारखंड में विधानसभा चुनाव की तिथियां घोषित होने से चुनावों के सिलसिले से छुटकारे की जरूरत एक बार फिर महसूस हो रही है। आखिर महाराष्ट्र और हरियाणा के साथ ही झारखंड विधानसभा के चुनाव कराने की पहल क्यों नहीं हुई? इस सवाल का चाहे जो जवाब हो, इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि झारखंड विधानसभा चुनाव खत्म होते ही दिल्ली विधानसभा के चुनाव करीब आ जाएंगे। दिल्ली विधानसभा चुनाव के बाद बिहार विधानसभा चुनाव निकट आ जाएंगे। इस तरह यह सिलसिला कभी खत्म नहीं होने वाला। बार-बार होने वाले चुनाव केवल सरकारी खजाने पर बोझ ही नहीं बनते, वे शासन-प्रशासन के आवेग को भी बाधित करते हैं। इसी के साथ वे राजनीतिक दलों की प्राथमिकताओं को भी प्रभावित करते हैं। हालांकि कुछ समय पहले लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने पर बहस हुई थी, लेकिन वह किसी नतीजे पर नहीं पहुंच सकी। इसका कारण यही रहा कि राजनीतिक दलों ने एक साथ चुनाव पर अपेक्षित गंभीरता का परिचय नहीं दिया।

इसमें दोराय नहीं कि लोकसभा के साथ विधानसभाओं के चुनाव कराने में कुछ समस्याएं हैं, लेकिन ऐसा नहीं है कि उनका समाधान नहीं हो सकता। यदि राजनीतिक इच्छाशक्ति हो तो ऐसा आसानी से किया जा सकता है। एक साथ चुनाव के विरोध में जो तर्क दिए जाते हैं उनका महत्व एक सीमा तक ही है, क्योंकि आजादी के बाद एक अर्से तक लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ ही होते रहे। आखिर जो काम पहले होता रहा वह फिर क्यों नहीं हो सकता? एक साथ चुनाव को लेकर एक बड़ी दलील यह है कि ऐसा होने से क्षेत्रीय दलों को घाटा हो सकता है। इस दलील में कुछ वजन तो है, लेकिन इस कथित घाटे से बचने के लिए लोकसभा चुनाव के दो या तीन साल बाद सभी विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराए जा सकते हैं। इस तरह पांच साल की अवधि में देश को केवल दो बार ही चुनावों का सामना करना होगा-पहले लोकसभा चुनाव का और फिर विधानसभाओं के चुनाव का। बेहतर हो कि राजनीतिक दल इस फार्मूले पर सहमत हों। चूंकि झारखंड नक्सली हिंसा से ग्रस्त है इसलिए यहां की 81 विधानसभा सीटों के लिए पांच चरणों में मतदान होगा। क्या छत्तीसगढ़ के मुकाबले झारखंड में नक्सलियों की चुनौती अधिक गंभीर है? यह सवाल इसलिए, क्योंकि करीब एक साल पहले छत्तीसगढ़ में 72 सीटों के लिए दो चरणों में ही मतदान हुआ था। स्पष्ट है कि इस पर भी गंभीरता से विचार होना चाहिए कि आखिर नक्सली संगठन कब तक चुनाव प्रक्रिया के लिए सिरदर्द बने रहेंगे?

चारधाम यात्रा

इस बार चारधाम यात्रा में रिकार्ड संख्या में पहुंचे तीर्थयात्रियों से उत्तराखंड सरकार के साथ ही स्थानीय व्यापारियों के चेहरे भी खिले हुए हैं। प्रदेश में वर्ष 2013 की आपदा के बाद यह सबसे सफलतम चारधाम यात्रा सीजन रहा। इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि इस वर्ष केदारनाथ में 10 लाख 21 हजार यात्री, बदरीनाथ में अभी तक तकरीबन 12 लाख यात्री, गंगोत्री में पांच लाख 30 हजार यात्री और यमुनोत्री में चार लाख 66 हजार तीर्थयात्री पहुंचे। बदरीनाथ व केदारनाथ में पहुंची तीर्थयात्रियों की यह संख्या अभी तक का ऑल टाइम रिकार्ड है। इससे पहले कभी भी यहां इतनी संख्या में तीर्थ यात्री नहीं पहुंचे। यह निश्चित तौर पर प्रदेश के लिए सुखद अहसास कहा जा सकता है। इससे यह साफ हो गया है कि प्रदेश में वर्ष 2013 में आई आपदा के बाद उत्तराखंड सरकार सुरक्षित चारधाम यात्रा का संदेश देने में कामयाब रही है। अब इसके पीछे चाहे व्यापक प्रचार प्रसार की भूमिका रही है या फिर जनता में चारधामों के प्रति श्रद्धा की भावना, कारण जो भी रहा हो, लेकिन यह प्रदेश के लिए खासा महत्वपूर्ण है। इससे देश-दुनिया में एक अच्छा संदेश भी गया है। इसके साथ ही स्थानीय निवासियों को रोजगार मिला तो व्यापारियों को अच्छी आय हुई है। यह स्थिति पर्वतीय क्षेत्रों में तेजी से होते पलायन को रोकने में सहायक होगी। चारधाम यात्रा की सफलता पर जहां तालियां बजाई जा सकती हैं तो वहीं इसमें आ रही दिक्कतों पर भी नजर डालना जरूरी है। गंगोत्री व यमुनोत्री मार्ग पर लगातार होते भूस्खलन ने कई बार यात्रा की रफ्तार को धीमा किया। इससे यात्रियों को खासी परेशानी हुई। ऐसा पहली बार नहीं है जब ऐसा हुआ है, बावजूद इसके इन स्थानों की समस्याओं का अब तक सही तरह से समाधान न किया जाना कहीं न कहीं यात्रा की तैयारियों पर सवाल उठाता है। इस समय श्रीनगर से ऋषिकेश तक का मार्ग बहुत बेहतर नहीं है। भले ही ऑल वेदर रोड के निर्माण के कारण यह स्थिति आई है, लेकिन इसे दुरुस्त रखा जा सकता था। सफल चारधाम यात्रा के बीच कुछ दुर्घटनाओं ने भी ध्यान आकर्षित किया। सरकार को चाहिए कि वह इस तरह की दुर्घटनाओं का कारण बनी खामियों पर ध्यान दे। बड़ी संख्या में यात्रियों के आने से अब सुविधाएं बढ़ाए जाने की जरूरत भी महसूस हो रही है, जिस पर सरकार को गंभीरता से काम करने की आवश्यकता है।

जब तीर्थयात्रियों की संख्या में खासी बढ़ोतरी हो रही है तो सरकार को सुविधाएं बढ़ाने पर भी ध्यान देना होगा

निज भाषा के सामर्थ्य की अनदेखी

शंकर शरण

जब तक हम अपनी भाषा में शिक्षण, लेखन, विमर्श नहीं करते तब तक उनके समकक्ष नहीं हो सकते जो अपनी भाषाओं में यह सब करते हैं

यह बात बार-बार साबित हो रही है कि जिन भारतीयों को पूरे देश से जुड़ाव-लगाव है वे तो हिंदी का महत्व समझते हैं, लेकिन जो राष्ट्रीय एकता के प्रति लापरवाह हैं, प्रायः वही हिंदी पर हीला-हवाला करते हैं। हमारे जो बुद्धिजीवी माओवादियों, अलगाववादियों, जिहादियों आदि से सहानुभूति रखते हैं, वे हिंदी का विरोध भी करते हैं। इसके विपरीत जो देश की धर्म-संस्कृति, एकता, अखंडता के प्रति समर्पित हैं, वे अपनी एक राष्ट्रीय भाषा का महत्व समझते हैं। इसे आरंभ से ही देख सकते हैं। ब्रिटिश राज के विरुद्ध आंदोलन में हिंदी को राष्ट्रीय भाषा बनाने के प्रयास हुए थे। ये प्रयास कलकत्ता और बंबई से हुए थे, न कि इलाहाबाद या पटना से। इसके लिए मराठी तिलक महाराज, बंगाली बंकिम चंद्र और रवींद्रनाथ, तमिल सुब्रहमण्यम भारती और गुजराती गांधी जैसे महापुरुषों ने प्रयास किए। नोट करें, अभी हिंदी की पैरोकारी करने वाले अमित शाह भी गुजराती हैं।

इतिहास दिखाता है कि हिंदी देश-प्रेम की भाषा रही है। वह किसी सीमित क्षेत्र की भाषा नहीं। इसीलिए इसके प्रति किसी क्षेत्र का आग्रह न था। न ही कोई क्षेत्र हिंदी को 'पराई' समझता था। वही स्थिति आज भी है। संविधान सभा में कृष्णस्वामी अय्यर, गोपाल स्वामी आयंगर, टीटी कृष्णमाचारी जैसे दक्षिण भारतीय दिग्गजों ने हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया था। तब यह सहज बात समझी गई थी जिसमें देशप्रेम की भावना थी। भारत में हिंदी किसी क्षेत्र विशेष की सीमित भाषा कभी नहीं थी। बांग्ला, तमिल, कन्नड़, मलयाली, मराठी की तरह ही छत्तीसगढ़ी, कुमाऊंनी, गढ़वाली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगधी, अंगिका और मैथिली, आदि के सीमित प्रदेश हैं, किंतु हिंदी पूरे देश का स्वर है। यह शुरू से अभी तक देखा जा सकता है।

महान कवि-चिंतक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन (अज्ञेय) के शब्दों में, हिंदी 'एक समग्र संस्कृति की संवाहिका' रही है। इसीलिए वह राष्ट्रीय भावनाओं व नए विचारों को ग्रहण कर, फिर संश्लेषण कर उसे पुनः देश के प्रत्येक कोने में पहुंचा कर 'क्लियरिंग हाउस' का काम भी करती रही है। अज्ञेय मूलतः पंजाबी थे, मगर गहरे अवलोकन से उन्होंने भाषाओं की वास्तविक स्थिति को समझा था। ठीक यही बात महान क्रांतिकारी भगत सिंह ने भी पहले कही थी। दरअसल, हिंदी को लेकर देश में जो भ्रांतियां फैलीं उनका एक कारण यही है कि उसे गलत परिभाषित किया जाता है। हिंदी भी एक बोली, 'खड़ी बोली' है। जैसे अवधी, भोजपुरी, आदि अन्य बोलियां हैं।

देश के एक क्षेत्र को 'हिंदी क्षेत्र' मानने का भ्रम इसलिए चलता है, क्योंकि उस क्षेत्र की बोलियां देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। किंतु यदि बांग्ला या गुजराती को देवनागरी में लिखें तो वे भी मैथिली या भोजपुरी जैसी ही हिंदी लगेंगी। आखिर हमारा राष्ट्र-गीत और राष्ट्र-गान दोनों ही बांग्ला गीत और गान हैं! परंतु देवनागरी में लिखने पर वह किसी को बांग्ला नहीं लगते। वही स्थिति गुजराती, तेलुगु, पंजाबी, कन्नड़, उर्दू, आदि के साथ भी है।

हिंदी किसी क्षेत्र विशेष की भाषा नहीं है। वह भारत के सभी भाषा-भाषियों के सम्मिलित योगदान से बनी है। उसकी कोई विशिष्ट या अलग शब्दावली नहीं है। इसीलिए वह पूरे भारत में बोली, समझी जाती है। वह या तो पूरे भारत की भाषा है या कहीं की नहीं है। यही हिंदी की पहचान और स्थिति है। इसीलिए भगत सिंह और अज्ञेय, दोनों ने कहा था कि देश में एक लिपि, देवनागरी, प्रचलित करने का प्रयास करें तो राष्ट्रीय भाषा की समस्या स्वतः सुलझ जाएगी। देवनागरी में लिखी कोई भी भारतीय भाषा हर देशवासी के लिए सरल, सहज, सहल होगी। उस पर अधिकार करना मामूली बात होगी जो अंग्रेजी के लिए पूरा जीवन लगाकर भी अधिकांश के लिए संभव नहीं।

जहां तक अंतरराष्ट्रीय मंचों पर 'हिंदी समझेगा कौन?' का प्रश्न है तो उन्हीं मंचों पर जापानी, हिब्रू, जर्मन, अरबी और रूसी आदि भी बोली जाती है। जैसे उसे सभी समझते हैं, वैसे ही हिंदी भी समझेंगे। यानी समांतर अनुवाद के प्रसारण से। यह दशकों पुरानी और मामूली, तकनीक है। कोई भाषा पूरी दुनिया में सभी नहीं समझते, लेकिन यदि बात महत्वपूर्ण हो तो दुनिया के कोने-कोने में उसे समझ लिया जाता है। जैसे, टैगोर की गीतांजलि। अतः जरूरी यह है कि हम पहले भारत के हृदय की बात बोलें। ऐसी बात अपनी भाषा में ही बोली जा सकेगी। जब हम ऐसा बोलने लगेंगे तो दुनिया हमें उसी तरह सुनेगी, जैसे वह संस्कृत में उपलब्ध संपूर्ण ज्ञान भंडार को सदियों से सुनती-गुनती रही है।

अवधेश राजपूत

दुनिया में आज भी भारत की पहचान यहां की भाषा में लिखित उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्र आदि से है। नीरद चौधरी, राजा राव, खुशवंत सिंह जैसे लेखकों से नहीं। समाज की रचनात्मकता और मौलिकता अनिवार्यतः उसकी अपनी भाषा से जुड़ी होती है। दुनिया में मौलिकता का महत्व है, माध्यम का नहीं। इसलिए यदि स्वतंत्र भारत में मौलिक चिंतन, लेखन का ह्रास होता गया तो अंग्रेजी के बोझ के कारण। मौलिक लेखन, चिंतन विदेशी भाषा में प्रायः असंभव है। कम से कम तब तक, जब तक ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका की मूल सभ्यता की तरह भारत सांस्कृतिक रूप से पूर्णतः नष्ट नहीं हो जाता और अंग्रेजी यहां सबकी एक मात्र भाषा नहीं बन जाती। तब तक भारतीय बुद्धिजीवी अंग्रेजी में कुछ भी क्यों न बोलते रहें, वह वैसी ही यूरोपीय जूठन की जुगाली होगी, जिसकी बाहर पूंछ नहीं हो सकती। आखिर गत सत्तर वर्षों से अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हमारे बुद्धिजीवी अंग्रेजी में ही तो बोलते रहे! क्या उन बातों ने कहीं, किसी विषय में, कोई छाप छोड़ी है? कहीं उसका कोई संदर्भ लिया जाता है? हमारी तुलना में छोटे-छोटे देशों यथा जापान, पोलैंड, दक्षिण कोरिया आदि में अधिक मौलिक लेखन, चिंतन या रचनात्मकता को दुनिया भर में नोट किया गया। इस बीच भारत का वैचारिक या रचनात्मक अवदान क्या रहा? इस बिंदु पर सलमान रुश्दी या विक्रम सेठ जैसों को नहीं गिनना चाहिए, क्योंकि मूलतः वे भारत त्याग कर यूरोप में बस चुके हैं या उन जैसे हो चुके हैं। उन लेखकों में भारत के अवशेष भले हों, उनकी रचनाओं में भारत नहीं बोलता।

वस्तुतः, अमित शाह ने एक गंभीर और मूल्यवान बात की ओर उल्लेख किया है। जब तक हम अपनी भाषा में शिक्षण, लेखन, विमर्श पर नहीं लौटेंगे, कभी तुलनात्मक रूप से उनके समकक्ष नहीं हो सकते जो अपनी भाषाओं में यह सब करते हैं। शुरुआत के लिए प्रो. कपिल कपूर की अध्यक्षता वाली सरकारी समिति ने सटीक सुझाव दिया है कि प्रत्येक राज्य को अपनी भाषा में शिक्षा और सभी सार्वजनिक काम को नियम बना लेना चाहिए जैसा अंग्रेजों के आने से पहले होता रहा था। इस सुधार के बाद शेष समस्याएं स्वतः अपने समाधान की ओर बढ़ने लगेंगी। याद रहे, भारत की सांस्कृतिक शक्ति ही मूल शक्ति है। इसके लिए अपनी भाषा पर खड़ा होना अपरिहार्य है।

(लेखक राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

प्रवासियों संग बदलती संस्कृति की छटा

बद्री नारायण

जब लोग विस्थापन करते हैं तो उनके साथ उनकी परंपराएं भी विस्थापित होती हैं और संस्कृति भी

जैसे सामाजिक समूह एक जगह से दूसरी जगह, गांव से शहर, एक शहर से दूसरे शहर, एक देश से दूसरे देश में विस्थापन करते हैं, वैसे ही संस्कृतियां भी विस्थापित होती हैं। इसी के साथ पर्व-त्योहार भी यात्राएं करते दिखते हैं। बहुसांस्कृतिक यानी कॉस्मोपोलिटन महानगरों यथा लंदन, न्यूयॉर्क, मुंबई, कोलकाता और दुबई में पर्व त्योहार एवं पूजा-पाठ से जाना जा सकता है कि उसे मनाने वाले समूह दुनिया के किस देश एवं सांस्कृतिक क्षेत्र के निवासी हैं। आचार्य क्षिति मोहन सेन ने 1940-50 के कालखंड में 'संस्कृति संगम' नामक एक अति महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी। इसमें उन्होंने बताया था कि किस प्रकार भारत की विभिन्न जातियों एवं सामाजिक समूहों के लोग विस्थापित होकर देश के एक भाग से दूसरे भाग में जाकर बसते गए। उनके पर्व-त्योहार और पूजा पद्धति से जाना जा सकता है कि वे मूलतः कहां के रहने वाले थे? अभी भी विस्थापन के साथ पर्व-त्योहारों के अनुगमन को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है।

बिहार की सांस्कृतिक अस्मिता के केंद्र में तो छठ पूजा का विशेष महत्व है ही, वह पूर्वी उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक अस्मिता में भी समाहित है। इस पर्व में सूर्य की पूजा के साथ गंगा की अराधना का भी विधान है। बिहार, झारखंड और पूर्वी उत्तर प्रदेश वासियों के विस्थापन के साथ ही यह त्योहार कोलकाता, दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों में भी पैठ बनाता गया और प्रवासियों की अस्मिता के प्रतीक के रूप में उभरा। इस पर्व को केंद्र में रखकर बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोगों ने अपने-अपने शहरों में छठ पूजा समितियां और अन्य सामाजिक संगठन बना लिए हैं। धीरे-धीरे इन संगठनों से उन महानगरों के भी अनेक समूह जुड़ते गए। मुंबई में छठ पूजा समितियों में महाराष्ट्र के लोगों की सहभागिता देखी जा सकती है। अनेक मराठी परिवार छठ पूजा में शामिल होकर व्रत भी करते हैं। वैसे तो बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश आदि के लोग अपने गांव-घर लौटकर वहीं छठ पूजा करना चाहते हैं, किंतु समय की कमी और दूसरी व्यस्तता के कारण वे अपनी कर्मभूमि बने महानगरों में ही अपने छठ व्रत संपन्न कर लेते हैं। दिल्ली की यमुना नदी, प्रयाग के गंगा घाट, लखनऊ की गोमती, मुंबई के समुद्र तट, गुयाना की कोरेंटाइन नदी प्रवासियों के प्रसार के कारण छठ पूजा स्थल में तब्दील हो जाती है।

चाहे यमुना तीरे हो या कोरेंटाइन का किनारा या फिर गोमती तट, यहां छठ गीत गाती महिलाएं एक तरह से गंगा से ही संवाद कर रही होती हैं। प्रवासियों के साथ फैल रहे पर्व-त्योहार उनकी सकारात्मक अस्मिता सृजित करते हैं। पर्व-त्योहार अपने संग पूजा-पाठ के साथ-साथ संगीत, लोक संस्कृति, लोकगीत, सबको स्वयं में गूंथे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन करते पाए जाते हैं। प्रवासी जहां बसते हैं वहां उनके पर्व-त्योहार अपने साथ लोक गायन एवं लोक गायकों के लिए संभावनाएं बनाते हैं। छठ पूजा के साथ भोजपुरी लोक गायन का स्पेस लगातार विस्तृत होता जा रहा है। चूंकि प्रवासियों के पर्व उनकी अस्मिता से जुड़े होते हैं अतः कई बार वे राजनीतिक गोलबंदी के प्रभावी कारक भी बनकर उभरते हैं। छठ का इस्तेमाल उत्तर भारतीयों को राजनीतिक रूप से गोलबंद करने के लिए भी किया जा रहा है। मुंबई में कई नेताओं की राजनीतिक शक्ति का स्रोत उत्तर भारतीयों के पर्व-त्योहार और खासकर छठ पूजा है। यही स्थिति दिल्ली और अन्यत्र भी दिखती है। आज दक्षिण भारत के शहरों में उत्तर भारत से गए आइटी इंजीनियर वहां पहुंचे कामगारों या फिर फेरीवालों के साथ छठ पूजा करते दिख जाते हैं।

छठ पूजा की तरह से उत्तर भारत में रहने वाले मराठियों की गणेश पूजा के आधार पर हम यह समझ सकते हैं कि ये गणेश पूजक समूह कहां से आकार बसे हैं? बनारस एवं इलाहाबाद में रहने वाले मराठी समुदाय की गणेश पूजा की विधि इन शहरों में उनकी अलग अस्मिता रचती है। हालांकि गणेश पूजा देश के अन्य भागों में भी लोकप्रिय है, किंतु मराठी समूहों की गणेश पूजा का अपना अलग ही स्वरूप है। मराठी जहां-जहां बसे हैं वहां-वहां उनके अनेक संगठन और गणेश पूजा मंडल भी सक्रिय हैं। पर्व-त्योहार के प्रसार से हम जनसांख्यिकी के बदलते मानचित्र के साथ प्रवास की प्रक्रिया एवं संस्कृति को भी आसानी से समझ सकते हैं। इसके साथ ही राजनीति के बदलते एवं बनते स्वरूप का भी आकलन कर सकते हैं।

(लेखक गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, प्रयागराज के निदेशक हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

प्रभुकृपा की महत्ता

अनादि काल से यह चराचर सृष्टि उस परमसत्ता की न्यायप्रिय बागडोर से ही अधिशासित होती रही है। उनकी यह व्यवस्था बहुत ही सुव्यवस्थित है जिसमें किसी जीव के साथ कोई अन्याय नहीं होता। फिर भी सभी को वह सब नहीं मिल पाता जिसकी वे कामना करते हैं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता के शिखर पर पहुंचने के दो ही सूत्र हैं। एक कार्य के प्रति निष्ठा एवं ईमानदारी और दूसरा है प्रभुकृपा जो बहुत ही निर्णायक है। प्रभुसत्ता के समक्ष संसार की सारी सत्ताएं धरी की धरी रह जाती हैं। बिना उसके वे वैभव व श्रीहीन हो जाती हैं। यदि मनुष्य के हाथ में कुछ होता तो वह मनचाहा जीवन जीने की प्रभुता रखता, लेकिन एक क्षण भी वह प्रभुकृपा की स्नेह-छांव के बिना जीवन यात्रा का पग आगे नहीं बढ़ा सकता। संसार में जिसे जो भी मिला है, वह केवल प्रभुकृपा से ही संभव हुआ है। चाहें तो इसकी स्वयं पुष्टि करके देखे लें कि प्रभुकृपा से पहले किसी व्यक्ति के पास वह सब कुछ क्यों नहीं था और प्रभु की कृपा के बिना वह कब तक उन सौगातों को सहेज कर रख पाएगा। वह उतनी ही देर उस पद अथवा सत्ता पर आसीन रह सकता है जितनी देर प्रभु कृपा से उसे अवसर प्राप्त हुआ है। उससे एक क्षण भी आगे नहीं।

जीव को जीवन का प्रत्येक अवसर प्रभु द्वारा उसकी उत्तम बुद्धिमत्ता, शक्ति, विवेक, पौरुष व उसकी मौलिकता की परीक्षा के लिए दिया जाता है कि उसमें वह प्रभु के सौंपे गए उत्तरदायित्वों में कितना खरा सिद्ध होता है। बार-बार प्रभु जीवनमूल्यों की स्थापना हेतु इस प्रकार के प्रेरक चरित्रों की रचना करते हैं। सत्य व मूल्य रक्षा हेतु किए गए ये कार्य ही परंपरा का निर्वहन कराते हैं। इस अक्षुण्ण परंपरा को जीवित रखने के लिए कालानुसार प्रभु पात्र व उनकी काया में परिवर्तन करते रहते हैं जो स्वयं कर्ता बनकर समय की शिला पर अमिट होना चाहता है, वह पल भर में ही अस्तित्वहीन हो जाता है। जिसे प्रभु का संरक्षण प्राप्त होता है, उसका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। प्रभुसत्ता को स्वीकार करके ही हम परमसत्ता को प्राप्त करने के सुपात्र बन सकते हैं।

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

बदलाव से ही मिलेगी मंजिल

कपिल अग्रवाल

कौशल विकास से रोजगार सृजन की सरकारी मंशा तो सही है, पर इसे सफल बनाने के लिए कुछ सुधार भी करने होंगे

हमारी अधिकांश सरकारी योजनाओं की रूपरेखा तैयार करते समय अंतरराष्ट्रीय दिशा-निर्देशों का भी पालन किया जाता है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के सुझाव पर चल रहे राष्ट्रीय कौशल विकास कार्यक्रम की भी यही कहानी है। मोदी सरकार के इस बेहद महत्वाकांक्षी कार्यक्रम के दायरे का हाल में और विस्तार किया गया है। इसकी बजटीय राशि में भी वृद्धि की गई है। अब हस्तकरघा, हस्तशिल्प, बुनाई, मिट्टी के बर्तन बनाने और चटाई बुनने जैसे तमाम कार्यों के लिए विभिन्न क्षेत्रों में 4,500 कौशल परिषदों की स्थापना बेरोजगारों को प्रशिक्षित किया जाएगा ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें। प्रशिक्षण के दौरान भारी-भरकम भत्ते आदि की व्यवस्था भी की गई है। वैसे इससे मिलती-जुलती और भी पहल की गईं, लेकिन अपेक्षित परिणाम नहीं मिले।

इस बीच तमाम समितियों का गठन किया गया और अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के महत्वपूर्ण सुझावों को इन्हीं व्यवस्थाओं के तहत अमल में लाया जा सकता था, लेकिन ऐसा न करके अरबों रुपये के बजट को झोंक कर पूरा का पूरा एक नया तंत्र ही स्थापित कर दिया गया। अब तक करीब 334 क्षेत्रों में कौशल परिषद स्थापित की जा चुकी हैं। इनके तहत देश भर में कौशल विकास केंद्र भी स्थापित किए जा रहे हैं जो पशुपालन से लेकर वाहन, मोबाइल व कंप्यूटर ठीक करने का प्रशिक्षण देंगे। एक राष्ट्रीय कौशल विकास समन्वय बोर्ड भी स्थापित किया गया है। यानी अब सरकार लोगों को पंक्चर लगाना, जूते सिलना, बुनाई करना व पापड़ बनाने जैसे तमाम काम सिखा रही है और सीखने के एवज में पैसे भी दे रही है।

केंद्र सरकार ने बीते आठ वर्षों में राष्ट्रीय कौशल विकास निगम के माध्यम से तमाम कॉरपोरेट समूहों को रियायती दर पर 19,000 करोड़ रुपये मुहैया कराए हैं ताकि वे कौशल क्षमता का विकास करके युवाओं को व्यावहारिक व व्यावसायिक प्रशिक्षण दे सकें। तमाम रपट बताती हैं कि इन कंपनियों ने इस रियायती मदद को अपने कारोबार में लगाने के अलावा बैंकों में रखकर ज्यादा प्रतिफल हासिल किया और अपने कंपनी समूह में कार्यरत प्रशिक्षुओं के खर्चे में दिखाकर कानूनी बाध्यताएं पूरी कर लीं। यानी सरकार की यह महत्वाकांक्षी योजना केवल कागजों व प्रसार माध्यमों में ही अपना कौशल निखार रही है।

दरअसल इस योजना में कुछ खामियां जिससे मनमाफिक नतीजे हासिल नहीं हो पा रहे हैं। एक तो यही कि इसमें न तो कोई परीक्षा रखी गई है और न ही यह निर्धारित किया गया है कि इस प्रशिक्षण का प्रमाण पत्र किस स्तर पर कहां-कहां मान्य होगा? प्रशिक्षण केंद्रों में भाषाई ज्ञान की भी कोई व्यवस्था नहीं। कई राज्यों ने निजी संस्थानों व गैर सरकारी संस्थाओं को इस कार्यक्रम का अनुबंध दे दिया है। संस्थाओं को प्रति छात्र के हिसाब से भुगतान किया जाता है। ये संस्थाएं कितने छात्रों को किस स्तर का प्रशिक्षण दे रही हैं, इसकी निगरानी के लिए कोई तंत्र नहीं है। एक दशक में 50 करोड़ युवाओं को कौशल प्रदान करने की यह अनूठी योजना कैसे सफल होगी, यह समझ के बाहर है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

गुलाम कश्मीर को लेकर भी हो पहल

गुलाम कश्मीर की कसक शीर्षक से लिखे अपने लेख में आर विक्रम सिंह ने गुलाम कश्मीर पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के मन की पीड़ा के बहाने स्वतंत्र भारत के आरंभिक शासकों की गुलाम कश्मीर के मामले में अपनाई गई अक्षम्य अदूरदर्शिता का बेहतरीन विश्लेषण किया है। कोई नहीं जानता कि क्यों उन लोगों ने पाकिस्तानी कबायलियों को सफलतापूर्वक पीछे धकेल रही भारतीय सेना को उड़ी में ही रोक दिया, जबकि आगे मुजफ्फराबाद का रास्ता पूरी तरह खुला हुआ था। इसके कारण पुंछ को उड़ी से जोड़ने वाली मुख्य सड़क, जो हाजीपीर दर्रे से होकर गुजरती है, सहित वर्तमान गुलाम कश्मीर पाकिस्तान से खाली न कराया जा सका। कश्मीर घाटी के प्रमुख नेता शेख अब्दुल्ला भी नहीं चाहते थे कि कश्मीर के इलाके, जो पंजाबी, पहाड़ी और गोजरी भाषी हैं, उन्हें भारत में मिलाया जाए, ताकि जम्मू-कश्मीर की राजनीति में कश्मीर घाटी और उनका वर्चस्व बना रहे। पाकिस्तान से 1965 के युद्ध में हाजीपीर दर्रे को जीत लेने के बाद भी ताशकंद में वार्ता की मेज पर हम इसे हार गए। ताशकंद में हमारे तत्कालीन प्रधानमंत्री शास्त्री जी की 'रहस्यमय मृत्यु' क्या जीते हुए भूभाग को लौटाने के दबाव से उपजी हताशा का ही परिणाम था अथवा और भी कुछ, यह तो अभी भी उद्घाटित होना शेष है। अच्छी बात है कि अब गुलाम कश्मीर की वापसी की बेचैनी हमारे शीर्ष नेतृत्व में भी दिख रही है।

चंदन कुमार, देवघर

प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता

भारतीय संविधान में हर किसी को शिक्षा का अधिकार मिला हुआ है। इसके लिए सरकार तमाम विद्यालय चला रही है, लेकिन इनमें बच्चों को जो शिक्षा मिल रही है, उसकी गुणवत्ता बहुत खराब है। स्कूलों में कहीं शिक्षक नहीं हैं तो कहीं वे पढ़ाते नहीं। कहीं-कहीं तो शिक्षक होते हुए भी वे चाहकर भी नहीं पढ़ा पाते हैं, क्योंकि वे सरकार के तमाम सर्वे कार्यों में लगे होते हैं। वहीं बहुत से स्कूलों में संसाधनों का अभाव भी है। दूसरी तरफ सरकार की बच्चों को पास करने की नीति से भी परेशानी खड़ी हो रही है। एक तरफ शिक्षक बच्चों को ठीक से पढ़ा नहीं पाते हैं और दूसरी तरफ उन्हें पास करना अनिवार्य होता है। ऐसे में शिक्षक औपचारिकता पूरी कर बच्चों को बिना ज्ञान के ही पास कर अगली कक्षा में प्रवेश दे देते हैं। विशेषकर उत्तर प्रदेश के ज्यादातर प्राथमिक विद्यालयों में यही स्थिति है। ऐसे में जो बच्चे पढ़कर निकलेंगे उनकी योग्यता का अंदाजा लगाया जा सकता है। इसमें न शिक्षक की गलती होती है और न ही बच्चों की, सारा दोष व्यवस्था का है। हमें प्राथमिक शिक्षा को साक्षरता के रूप में नहीं देखना चाहिए, बल्कि इसको भविष्य में आने वाली फसल के रूप में देखना चाहिए कि अच्छी फसल कैसे आए। प्राथमिक शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए राज्य सरकारों को प्राथमिक विद्यालय को केंद्रीय विद्यालय के अनुरूप विकसित करना चाहिए, साथ ही शिक्षक की गुणवत्ता को सुधारने के लिए प्रशिक्षण की विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए।

ऋषि भारद्वाज, नोएडा

दलबदलू नेता

हाल ही में हुए विधानसभा चुनावों में जनता ने दल बदल करने वाले नेताओं को धूल चटा कर शुभ संदेश देने का काम किया है। यह जनता की जागरूकता का प्रमाण है। हवा का रुख भांपकर इधर से उधर दल बदल कर अपना उल्लू सीधा करने वाले नेताओं को हरा ही देना चाहिए। ऐसे नेताओं की कोई विचारधारा नहीं होती है। ये किसी के सगे नहीं हो सकते हैं। ऐसे स्वार्थी नेताओं को सत्ता से बेदखल करना ही चाहिए।

hemahariupadhyay@gmail.com

गैस चैंबर बनी दिल्ली

दिल्ली और एनसीआर के इलाके शहरीकरण की त्रासदी से जूझ रहे हैं। यहां रहने वालों से स्वच्छ हवा में सांस लेने का अधिकार छीन लिया गया है। दिल्ली और उसके आसपास के इलाके गैस चैंबर बने हुए हैं। इस त्रासदी से 2 करोड़ से ज्यादा लोग प्रभावित हैं। इसके लिए हम कभी पटाखों को दोष देते हैं कभी डीजल गाड़ियों को तो कभी पराली को, मगर खुद को, खुद की नीयत को, खुद के नाकारापन को कभी दोष नहीं देते। जबकि इस प्रदूषण के लिए हम खुद भी जिम्मेदार हैं।

बृजेश माथुर, बृज विहार, गाजियाबाद

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।